वीर-शासन और उसका महत्त्व

वीर-शासन

अन्तिम तीर्थंकर भगवान वीरने आजसे २४९८ वर्ष पूर्व विहार प्रान्तके विपुलाचल पर्वतपर स्थित होकर श्रावण कृष्णा प्रतिपदाकी पुण्यवेलामें, जब सूर्यका उदय प्राचीसे हो रहा था, संसारके संतप्त प्राणियोंके संतापको दूरकर उन्हें परम शान्ति प्रदान करनेवाला धर्मोपदेश दिया था। उनके धर्मोपदेशका यह प्रथम दिन था। इसके बाद भी लगातार उन्होंने तीस वर्ष तक अनेक देश-देशान्तरोंमें विहार करके पथ-भ्रष्टोंको सत्पथका प्रदर्शन कराया था, उन्हें सन्मार्ग पर लगाया था। उस समय जो महान् अज्ञान-तम सर्वत्र फैला हुआ था, उसे अपने अमृत-मय उपदेशों द्वारा दूर किया था, लोगोंकी भूलोंको अपनी दिव्य वाणीसे बताकर उन्हें तत्त्वपथ ग्रहण कराया था, सम्यक्दृष्टि बनाया था। उनके उपदेश हमेशा दया एवं अहिंसासे ओत-प्रोत हुआ करते थे। यही कारण था कि उस समयकी हिंसामय स्थिति अहिंसामें परिणत हो गयी थी और यही वजह थी कि इन्द्रभूति जैसे कट्टर वैदिक ब्राह्मण विद्वान् भी, जिन्हें बादको भगवान वीरके उपदेशोंके संकलनकर्ता—मुख्य गणधर तकके पदका गौरव प्राप्त हुआ है, उनके उपाश्रयमें आये और अन्तमें उन्होंने मुक्तिको प्राप्त किया। इस तरह भगवान वीरने अवशिष्ट तीस वर्षके जीवनमें संख्यातीत प्राणियोंका उद्धार किया और जगतको परम हितकारक सच्चे धर्मका उपदेश दिया। वीरका यह सब दिव्य उपदेश ही 'वीरशासन' या 'वीरतीर्थ' है और इस तीर्थको चलाने–प्रवृत्त करनेके कारण ही वे 'तीर्थंकर' कहे जाते हैं। वर्तमानमें उन्हींका शासन—तीर्थ चल रहा है,। यह वीर-शासन क्या है? उसके महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त कौनसे हैं? और उसमें क्या-क्या उल्लेखनीय विशेषतायें हैं? इन बातोंसे बहुत कम सज्जन अवगत हैं। अतः इन्हीं बातोंपर संक्षेपमें कुछ विचार किया जाता है।

समन्तभद्र स्वामीने, जो महान् तार्किक एवं परीक्षाप्रधानी प्रसिद्ध जैन आचार्य थे और जो आजसे लगभग १८०० वर्ष पूर्व हो चुके हैं, भगवान् महावीर और उनके शासनकी सयुक्तिक परीक्षा एवं जांच की है—'युक्तिमद्वचन' अथवा 'युक्तिशास्त्राविरोधिवचन' और 'निर्दोषता' की कसौटीपर उन्हें और उनके शासनको खूब कसा है। जब उनकी परीक्षामें भगवान् महावीर और उनका शासन सौटंची स्वर्णकी तरह ठीक साबित हुये तभी उन्हें अपनाया है। इतना ही नहीं, किन्तु भगवान् वीर और उनके शासनकी परीक्षा करनेके लिये अन्य परीक्षकों तथा विचारकोंको भी आमन्त्रित किया है—निष्पक्ष विचारके लिये खुला निमंत्रण दिया है।[1] समन्तभद्र स्वामीके ऐसे कुछ परीक्षा-वाक्य थोड़े-से ऊहापोहके साथ नीचे दिये जाते हैं :—

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः। मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्॥
आप्तमीमांसा १।

---

१. युक्त्यनुशासन, का० ६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'हे वीर ? देवोंका आना, आकाशमें चलना, चमर, छत्र, सिंहासन आदि विभूतियोंका होना तो मायावियों—इन्द्रजालियोंमें भी देखा जाता है, इस वजहसे आप हमारे महान्—पूज्य नहीं हो सकते और न इन बातोंसे आपकी कोई महत्ता या बड़ाई है।

समन्तभद्र स्वामीने ऐसे अनेक परीक्षा-वाक्यों द्वारा उनकी और उनके शासनकी परीक्षा की है, जिनका कथन सूत्ररूपसे आप्त-मीमांसामें दिया हुआ है। परीक्षा करनेके बाद उन्हें उनमें महत्ताकी जो बात मिली है और जिसके कारण भगवान् वीरको 'महान्' तथा उनके शासनको 'अद्वितीय' माना है। वह यह है :—

त्वं शुद्धि-शक्तयोरुदयस्य काष्ठां, तुलाव्यतीतां जिन शान्तिरूपाम्।
अवापिथ ब्रह्मपथस्य नेता, महानितीयत्प्रतिवक्तमीशाः ॥

युक्त्यनुशासन ४।

'हे जिन! आपने शुद्धिके—ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्मके क्षयसे उत्पन्न आत्मीय ज्ञान-दर्शनके तथा शक्तिके—वीर्यान्तरायकर्मके क्षयसे उत्पन्न आत्मबलके—परम प्रकर्षको प्राप्त किया है—आप अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान और अनन्तवीर्यके धनी हैं। साथ ही अनुपम एवं अपरिमेय शान्तिरूपताको—अनन्तसुखको भी प्राप्त हैं, इसीसे आप 'ब्रह्मपथ' के—मोक्षमार्गके—नेता हैं और इसीलिए आप महान् है—पूज्य हैं। ऐसा हम कहने—सिद्ध करनेके लिए समर्थ हैं।'

समन्तभद्र वीरशासनको अद्वितीय बतलाते हुए लिखते हैं :—

दया-दम-त्याग-समाधि-निष्ठं, नयप्रमाणप्रकृताञ्जसार्थम्।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादैर्जिन त्वदीयं मतमद्वितीयम् ॥

—युक्त्यनुशासन

'हे वीर जिन! आपका मत—शासन नय और प्रमाणोंके द्वारा वस्तुतत्त्वको बिलकुल स्पष्ट करने वाला है और अन्य समस्त एकान्तवादियोंसे अबाध्य है—अखंडनीय है, साथमें दया—अहिंसा, दम—इन्द्रिय-निग्रहरूप संयम, त्याग—दान अथवा समस्त परिग्रहका परित्याग और समाधि—प्रशस्त ध्यान इन चारोंकी तत्परताको लिये हुये है, इसलिए वह 'अद्वितीय' है।

दयाके बिना दम—संयम नहीं बन सकता और संयमके बिना त्याग नहीं और त्यागके बिना समाधि—प्रशस्त ध्यान नहीं हो सकता, इसीसे वीरशासनमें दया—अहिंसाको प्रधान स्थान प्राप्त है।

'वीर-शासन' की इस महत्ताको बतलानेके बाद समन्तभद्र उसे 'सर्वोदयतीर्थ' भी बतलाते हैं—

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥

युक्त्यनुशासन

'हे वीर! आपका तीर्थ—शासन अथवा परमागम-द्वादशाङ्गश्रुत—समस्त धर्मों वाला है और मुख्य गौणकी अपेक्षा समस्त धर्मोंकी व्यवस्थासे युक्त है—एक धर्मके प्रधान होनेपर अन्य बाकी धर्म गौण मात्र हो जाते हैं—उनका अभाव नहीं होता। किन्तु एकान्तवादियोंका आगमवाक्य अथवा शासन परस्पर निरपेक्ष होनेसे सब धर्मों वाला नहीं है—उनके यहाँ धर्मोंमें परस्पर अपेक्षा न होनेसे दूसरे धर्मोंका अभाव हो जाता है और उनके अभाव हो जानेपर उस अविनाभावी अभिप्रेत धर्मका भी अभाव हो जाता है। इस तरह एकान्तमें न वाच्यतत्त्व ही बनता है और न वाचकतत्त्व ही। और इसलिए हे वीर जिनेन्द्र! परस्परकी अपेक्षा रखनेके कारण—अनेकान्तमय होनेके कारण—आपका ही तीर्थ—शासन सम्पूर्ण आपदाओंका अन्त करने वाला है और स्वयं निरंत है—अंतरहित अविनाशी है तथा सर्वोदयरूप है—समस्त अभ्युदयों—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मिक और भौतिक विभूतियोंका कारण है। तथा सर्व प्राणियोंके अभ्युदय—अभ्युत्थानका हेतु है। समन्तभद्रके इन वाक्योंसे यह भले प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः 'वीर-शासन' सर्वोदय तीर्थ कहलानेके योग्य है। उसमें वे विशेषताएँ एवं महत्तायें हैं, जो आज विश्वके लिए वीरशासनकी देन कही जाती हैं या कही जा सकती हैं। यहाँ वे विशेषतायें भी कुछ निम्न प्रकार उल्लिखित हैं—

वीरशासनकी विशेषताएँ

१ अहिंसावाद, २ साम्यवाद ३ स्याद्वाद और ४ कर्मवाद। इनके अलावा वीरशासनमें और भी वाद हैं—आत्मवाद, ज्ञानवाद, चारित्रवाद, दर्शनवाद, प्रमाणवाद, नयवाद, परिग्रहपरिमाणवाद, प्रमेयवाद आदि। किन्तु उन सबका उल्लिखित चार वादोंमें ही प्रायः अन्तर्भाव हो जाता है। प्रमाणवाद और नयवादके ही नामान्तर हैं और इनका तथा प्रमेयवादका स्याद्वादके साथ सम्बन्ध होनेसे स्याद्वादमें और बाकीका अहिंसावाद तथा साम्यवादमें अन्तर्भाव हो जाता है।

१. अहिंसावाद

'स्वयं जियो और जीनो दो' की शिक्षा भगवान् महावीरने इस अहिंसावाद द्वारा दी थी। जो परम आत्मा, परमब्रह्म, परमसुखी होना चाहता है उसे अहिंसाकी उपासना करनी चाहिये—उसे अपने समान ही सबको देखना चाहिये—अपना अहिंसक आचरण बनाना चाहिये। मनुष्यमें जब तक हिंसक वृत्ति रहती है तब तक आत्मगुणोंका विकास नहीं हो पाता—वह दुःखी, अशान्त बना रहता है। अहिंसकका जीवमात्र मित्र बन जाता है—सर्व वैरका त्याग करके जातिविरोधी जीव भी उसके आश्रयमें आपसमें हिलमिल जाते हैं। क्रोध, दम्भ, द्वेष गर्व, लोभ आदि ये सब हिंसाकी वृत्तियाँ हैं। ये सच्चे अहिंसकके पासमें नहीं फटक पाती हैं। अहिंसकको कभी भय नहीं होता, वह निर्भीकताके साथ उपस्थित परिस्थितिका सामना करता है, कायरतासे कभी पलायन नहीं करता। अहिंसा कायरोंका धर्म नहीं है वह तो वीरोंका धर्म है। कायरताका हिंसाके साथ और वीरताका अहिंसाके साथ सम्बन्ध है। शारीरिक बलका नाम वीरता नहीं, आत्मबलका नाम वीरता है। जिसका जितना अधिक आत्मबल विकसित होगा वह उतना ही अधिक वीर और अहिंसक होगा। शारीरिक बल कदाचित ही सफल होता देखा गया है, लेकिन सूखी हड्डियों वालेका भी आत्मबल विजयी और अमोघ रहा है।

अतः अहिंसा पर कायरताका लांछन लगाना निराधार है। भगवान् महावीरने वह अहिंसा दो प्रकारकी वर्णित की है—गृहस्थकी अहिंसा, २ साधुकी अहिंसा।

गृहस्थ-अहिंसा

गृहस्थ चार तरहकी हिंसाओं—आरम्भी, उद्योगी, विरोधी और संकल्पीमें—केवल संकल्पी हिंसाका त्यागी होता है, बाकीकी तीन तरहकी हिंसाओंका त्यागी वह नहीं होता। इसका मतलब यह नहीं है कि वह इन तीन तरहकी हिंसाओंमें असावधान बनकर प्रवृत्त रहता है, नहीं, आत्मरक्षा, जीवननिर्वाह आदिके लिये जितनी अनिवार्य हिंसा होगी वह उसे करेगा, फिर भी वह अपनी प्रवृत्ति हमेशा सावधानीसे करेगा। उसका व्यवहार हमेशा नैतिक होगा। यही गृहस्थधर्म है, अन्य क्रियाएँ—आचरण तो इसीके पालनके दृष्टिबिन्दु हैं।

साधु-अहिंसा

साधुकी अहिंसा सब प्रकारकी हिंसाओंके त्यागमेंसे उदित होती है, उसकी अहिंसामें कोई विकल्प नहीं होता। वह अपने जीवनको सुवर्णके समान निर्मल बनानेके लिए उपद्रवों, उपसर्गोंको सहनशीलताके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ सहन करता है। निन्दा करने वालोंपर रुष्ट नहीं होता और स्तुति करने वालोंपर प्रसन्न नहीं होता। वह सबपर साम्यवृत्ति रखता है। अपनेको पूर्ण सावधान रखता है। तामसी और राजसी वृत्तियोंसे अपने आपको बचाये रखता है। मार्ग चलेगा तो चार कदम जमीन देखकर चलेगा; जीव-जन्तुओंको बचाता हुआ चलेगा, हित-मित वचन बोलेगा, ज्यादा बकवाद नहीं करेगा। गरज यह कि जैन साधु अपनी तमाम प्रवृत्ति सावधानीसे करता है। यह सब अहिंसाके लिए, अहिंसातत्त्वकी उपासनाके लिए 'परमब्रह्मको प्राप्त करनेके लिए 'अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं' इस समन्तभद्रोक्त तत्त्वको हासिल करनेके लिए। इस तरह जैन साधु अपने जीवनको पूर्ण अहिंसामय बनाता हुआ, अहिंसाकी साधना करता हुआ, जीवनको अहिंसाजन्य अनुपम शांति प्रदान करता हुआ, विकारी पुद्गलसे अपना नाता तोड़ता हुआ, कर्म-बन्धनको काटता हुआ, अहिंसामें ही—परमब्रह्ममें ही—शाश्वतानन्दमें ही—निमग्न हो जाता है—लीन हो जाता है—सदाके लिए—अनन्तकालके लिए। फिर उसे संसारका चक्कर नहीं लगाना पड़ता। वह अजर, अमर, अविनाशी हो जाता है। सिद्ध एवं कृतकृत्य बन जाता है यह सब अहिंसाके द्वारा ही। वीर-शासनकी जड़—बुनियाद—आधार और विकास अहिंसा ही है।

वर्तमानमें जैन समाज इस अहिंसा-तत्त्व को कुछ भूल-सा गया है। इसीलिये जैनेतर लोग उसके बाह्याचारको देखकर 'जैनी अहिंसा', 'वीर अहिंसा', पर कायरताका कलंक मढ़ते हुए पाये जाते हैं। क्या ही अच्छा हो, जैनी लोग अपने व्यवहारसे अहिंसाको व्यावहारिक धर्म बनाये रखनेसे सच्चे अर्थोंमें 'जैनी' बनें, आत्मबल पुष्ट करें, साहसी और वीर बनें, जितेन्द्रिय होवें। उनकी अहिंसा केवल चिवटी-खटमल, जूँ आदिकी रक्षा तक ही सीमित न हो, जिससे दूसरे लोग हमारे दम्भपूर्ण व्यवहार—निरा अहिंसाके व्यवहार-को देखकर वीर प्रभुकी महती देन—अहिंसापर कलंक न मढ़ सकें।

२ साम्यवाद

यह अहिंसाका ही अवान्तर सिद्धान्त है, लेकिन इस सिद्धान्तकी हमारे जीवनमे अहिंसाकी ही भाँति अपनाये जानेकी आवश्यकता होनेसे 'अहिंसावाद' के समकक्ष इसकी गणना करना उपयुक्त है, क्योंकि भगवान् वीरके शासनमें सबके साथ साम्य-भाव—सद्भावनाके साथ व्यवहार करनेका उपदेश है, अनुचित राग और द्वेषका त्यागना, दूसरोंके साथ अन्याय तथा अत्याचारका बर्ताव नहीं करना, न्यायपूर्वक ही अपनी आजीविका सम्पादित करना, दूसरोंके अधिकारोंको हड़प नहीं करना, दूसरोंकी आजीविका पर नुकसान नहीं पहुँचाना, उनको अपने जैसा स्वतन्त्र और सुखी रहनेका अधिकारी समझकर उनके साथ 'वसुधैव कुटुम्बकम्'—यथा-योग्य भाईचारेका व्यवहार करना, उनके उत्कर्षमें सहायक होना, उनका कभी अपकर्ष नहीं सोचना, जीव-नोपयोगी सामग्रीको स्वयं उचित और आवश्यक रखना और दूसरोंको रखने देना, संग्रह, लोलुपता, चूंसनेकी वृत्तिका परित्याग करना ही 'साम्यवाद' का लक्ष्य है—साम्यवादको शिक्षाका मुख्य उद्देश्य है। यदि आज विश्वमें वीरप्रभुकी यह साम्यवादकी शिक्षा प्रसृत हो जावे तो सारा विश्व सुखी और शांतिपूर्ण हो जाय।

३ स्याद्वाद अथवा अनेकान्तवाद

इसको जन्म देनेका महान् श्रेय वीरशासनको ही है। प्रत्येक वस्तुके खरे और खोटेकी जाँच 'अने-कान्त दृष्टि'-'स्याद्वाद' की कसौटीपर ही की जा सकती है। चूँकि वस्तु स्वयं अनेकान्तात्मक है उसको वैसा माननेमें ही वस्तुतत्त्वकी व्यवस्था होती है। स्याद्वादके प्रभावसे वस्तुके स्वरूप-निर्णयमें पूरा-पूरा प्रकाश प्राप्त होता है और सकल दुर्नयों एवं मिथ्या एकान्तोंका अन्त हो जाता है तथा समन्वयका एक महानतम प्रशस्त मार्ग मिल जाता है। कुछ जैनेतर विचारकोंने स्याद्वादको ठीक तरह से नहीं समझा। इसीसे उन्होंने स्याद्वादके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंडनमें कुछ दूषण दिये हैं। शंकराचार्यने 'एकस्मिन्नसंभवात्' द्वारा 'एक जगह दो विरोधी धर्म नहीं बन सकते हैं।' यह कहकर स्याद्वादमें विरोधदूषण दिया है। किन्हीं विद्वानोंने इसे संशयवाद, छलवाद कह दिया है, किन्तु विचारनेपर उसमें इस प्रकारके कोई भी दूषण नहीं आते हैं। स्याद्वादका प्रयोजन है यथावत् वस्तुतत्त्वका ज्ञान कराना, उसकी ठीक तरहसे व्यवस्था करना, अब ओरसे देखना और स्याद्वादका अर्थ है कथंचित्वाद, दृष्टिवाद, अपेक्षावाद, सर्वथा एकान्तका त्याग, भिन्न-भिन्न पहलुओंसे वस्तुस्वरूपका निरूपण, मुख्य और गौणकी दृष्टिसे पदार्थका विचार[1]। स्याद्वादमें जो 'स्यात्' शब्द है उसका अर्थ ही यही है[2] कि किसी एक अपेक्षासे—सब प्रकारसे नहीं—एक दृष्टिसे—है। 'स्यात्' शब्दका अर्थ 'शायद' नहीं है जैसा कि 'भारतीय दर्शनशास्त्रका इतिहास' के लेखक विद्वान्ने भी समझा है। वे अपनी इस पुस्तकमें लिखते हैं कि 'स्याद्वादका वाच्यार्थ है 'शायदबाद' अंग्रेजीमें इसे 'प्रोबेबिल्ज़िम' कह सकते हैं। अपने अतिरंजितरूपमें स्याद्वाद संदेहवादका भाई है[3]।" इसपर और आगे पीछेके जैनदर्शन सम्बन्धी उनके निबन्ध पर आलोचनात्मक स्वतन्त्र लेख ही लिखा जाना योग्य है। यहाँ तो केवल स्याद्वादको 'संदेहवाद' का भाई समझनेके विचारका चिंतन किया जायगा। उक्त लेखक यदि किसी जैन विद्वान्से 'स्याद्वाद' के 'स्यात्' शब्दके अर्थको निबन्ध लिखनेके पहिले अवगत कर लेते तो इतनी स्थूल गलती उन जैसोंसे—भारतीयदर्शनशास्त्रका अपनेको अधिकारी विद्वान् समझने वालोंसे—न होती। जैन विचारकोंने 'स्यात्' शब्दका जो अर्थ किया है वह मैं ऊपर बता आया हूँ,। देवराजव्यक्तिमें अनेक सम्बन्ध विद्यमान हैं—किसीका वह मामा है तो किसीका भानजा, किसीका पिता है तो किसीका पुत्र, इस तरह उसमें कई सम्बन्ध मौजूद हैं। मामा अपने भानजेकी अपेक्षा, पिता अपने पुत्रकी अपेक्षा, भानजा अपने मामाकी अपेक्षा, पुत्र अपने पिताकी अपेक्षासे है, इस प्रकार देवराजमें पितृत्व, पुत्रत्व, मातुलत्व, स्वस्रीयत्व आदि धर्म निश्चित रूप ही हैं—संदिग्ध नहीं हैं और वे हर समय विद्यमान हैं। 'पिता' कहे जानेके समय पुत्रपना उनमेंसे भाग नहीं जाता है—सिर्फ गौण होकर रहता है। इसी तरह जब उनका भानजा उन्हें 'मामा-मामा' कहता है उस समय वे अपने मामाकी अपेक्षा भानजे नहीं मिट जाते—उस समय भानजापना उनमें गौणमात्र होकर रहता है। स्याद्वाद इस तरहसे वस्तुधर्मोंकी गुत्थियोंको सुलझाता है—उनका यथावत् निश्चय कराता है[4]—स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी अपेक्षासे ही वस्तु 'सत्'—अस्तित्ववान् है और परद्रव्य क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे ही वस्तु 'असत्'—नास्तित्ववान् है आदि सात भङ्गों द्वारा ग्रहण करने योग्य और छोड़ने योग्य (गौण कर देने योग्य) पदार्थोंका स्याद्वाद हस्तामलकवत् निर्णय करा देता है। संदेह या भ्रमको वह पैदा नहीं करता है। बल्कि स्याद्वादका आश्रय लिये बिना वस्तुतत्त्वका याथातथ्य निर्णय हो ही नहीं सकता है। अतः स्याद्वादको संदेहवाद समझना नितांत असाधारण भूल है। भिन्न दो अपेक्षाओंसे विरोधी सरीखे दीख रहे (विरोधी नहीं) दो धर्मोंके एक जगह रहनेमें कुछ भी विरोध नहीं है। जहाँ पुस्तक अपनी अपेक्षा अस्तित्वधर्मवाली है वहाँ अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा नास्तित्वधर्मवाली भी है, पर—निषेधके बिना स्वस्वरूपास्तित्व प्रतिष्ठित नहीं हो सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि स्याद्वादमें न विरोध है और न सन्देह जैसा अन्य कोई दूषण; वह तो वस्तुनिर्णयका—तत्त्वज्ञानका अद्वितीय अमोघ शस्त्र है, सबल साधन है। वस्तु चूँकि अनेक धर्मात्मक है और उसका व्यवस्थापक स्याद्वाद है इसलिये स्याद्वादको ही अनेकान्तवाद भी कहते हैं। किन्तु 'अनेकान्त' और 'स्याद्वाद'में वाच्य-वाचक-सम्बन्ध है।

---

१. आप्तमीमांसा का० १०४।
२. आप्तमीमांसा का० १०३।
३. 'भारतीय दर्शनशास्त्रका इतिहास', पृ० १३५।
४. देखो, आप्तमीमांसा का० १५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. कर्मवाद

कर्म जड़ है, पौद्गलिक है, उसका जीवके साथ अनादिकालिक सम्बन्ध है। कर्मकी वजहसे ही जीव पराधीन है और सुखदुःखका अनुभव करता है। वह कर्मसे अनेक पर्यायोंको धारण करके चतुर्गति संसारमें घूमता है। कभी ऊँचा बन जाता है तो कभी नीचा, दरिद्र होता है तो कभी अमीर, मूर्ख होता है तो कभी विद्वान्, अन्धा होता है तो कभी बहिरा, लंगड़ा होता है तो कभी बौना, इस तरह शुभाशुभ कर्मोंकी बदौलत दुनियाके रंगमंचपर नटकी तरह अनेकों भेषोंको धारण करता है—अनगिनत पर्यायोंमें उपजता और मरता है। यह सब कर्मकी विडम्बना—कर्मकी प्रपञ्चना है। वीरशासनमें कर्मके मूल और उत्तरभेद और उनके भी भेदोंका बहुत ही सुन्दर, सूक्ष्म, विशद विवेचन किया है। बंध, बंधक, बन्ध्य और बन्धनीय तत्त्वोंपर गहरा विचार किया है। जीव कैसे और कब कर्मबंध करता है इन सभी बातोंका चिंतन किया गया है। कर्मवादसे हमें शिक्षा मिलती है कि हम स्वयं ऊँचे उठ सकते हैं और स्वयं ही नीचे गिर सकते हैं।

वीरशासनमें जीवादि सात तत्त्वों, सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्ग और प्रमाण, नय, निक्षेप आदि उपायतत्त्वोंका भी बहुत ही सम्बद्ध एवं संगत, विशद व्याख्यान किया गया है। प्रमाणके दो (प्रत्यक्ष और परोक्ष) भेद करके उन्हींमें अन्य सब प्रमाणोंके अन्तर्भावकी विभावना कितने सुन्दर एवं युक्तिपूर्ण ढंगसे की गई है, वह एक निष्पक्ष विचारकको आकर्षित किये बिना नहीं रहती है। नयवाद तो जैन दर्शनकी अन्यतम महत्त्वपूर्ण देन है। वस्तुके अंशज्ञानको नय कहते हैं। वे नय अनेक हैं। वस्तुके भिन्न-भिन्न अंशोंको ग्रहण करने वाले नय ही हैं। ज्ञाताकी हमेशा प्रमाण-दृष्टि नहीं रहती है। कभी उसका वस्तुके किसी खास धर्मको ही जाननेका अभिप्राय होता है, उस समय उसकी नय-दृष्टि होती है और इसीलिये ज्ञाताके अभिप्रायको जैन दर्शनमें नय माना है। चूँकि वक्ताकी वचन-प्रवृत्ति भी क्रमशः होती है—वचनों द्वारा वह एक अंशका ही प्रतिवचन कर सकता है। इसलिये वक्ताके वचन-व्यवहारको भी जैनदर्शनमें 'नय' माना है। अतएव ज्ञानात्मक और वचनात्मकरूपसे अथवा ज्ञाननय और शब्दनयके भेदसे नय वर्णित हैं। इस तरह वीरशासन वैज्ञानिक एवं तात्त्विक शासन है। उसके अहिंसा, स्याद्वाद जैसे विश्वप्रिय सिद्धान्तोंसे उसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता भी अधिक प्रकट होती है।

वीरशासनके अनुयायी हम जैनोंका परम कर्त्तव्य है कि भगवान् वीरके द्वारा उपदेशित उनके 'सर्वोदय तीर्थ' को विश्वमें चमत्कृत करें और उनके पवित्र सिद्धान्तोंका स्वयं ठीक तरह पालन करें तथा दूसरोंको पालन करावें और उनके शासनका प्रसार करें।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org